जमाव नहीं होने पाये, इसका समुचित प्रबंध होना चाहिए। ओल के साथ-साथ अन्य अर्न्तवर्त्ती फसलें जैसे भिण्डी, खीरा, बोड़ो, मक्का आदि फसलों को लगाने की अनुशंसा की गई है।

रोग नियंत्रण:

जिमिकंद का झुलसा या अंगमारी रोग: रोग के आरंभिक अवस्था में पत्तियों पर छोटे-छोटे हल्के भूरे रंग के धब्बे बनते है, जो बाद में सूख कर काले पड़ जाते है। पत्तियाँ धीरे-धीरे पीली पड़ जाती है तथा पौधों की बढ़वार रुक जाती है और कंद का आकार छोटा हो जाता है। अधिक प्रकोप होने पर उपज में 50 से 60 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

तना गलन या कालर रॉट: यह रोग स्केलोरोशियम रोल्फासाई के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप पाय: जुलाई से सितम्बर माह तक पौधों पर होता है। यह रोग बरसात में अधिक होता है। वर्षा के बाद गर्म वातावरण इसके लिए अधिक उपयुक्त है। निकाई-गुड़ाई के समय पौधों के तनों का क्षतिग्रस्त होना और जल निकास की अच्छी व्यवस्था न होना इस रोग के फैलाव में सहायक होते हैं।

यह एक मिट्टी जनित रोग है। इस रोग के लक्षण कालर भाग पर सर्वप्रथम दिखलाई पड़ता है। कालर भाग पर पानी के गोल धब्बे के साथ भूरे सफेद धब्बे बनते है। कालर भाग धीरे-धीरे सड़ने लगता है तथा सिकुड़ जाता है। पौधे पीले पड़कर जमीन पर गिर जाते है। कन्द बन नहीं पाता तथा यदि कन्द बनता भी है तो आकार में छोटा होता है जिससे उपज में भारी कमी होती है।

मोजैक: यह ओल का विषाणु जनित रोग है। पौधों के शुरुआती अवस्था में यदि इस रोग का प्रकोप होता है, तो उपज में काफी कमी आति है। पौधों की पत्तियाँ सिकुड़ कर छोटी हो जाती है। पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा कन्द नहीं बन पाते। नई पत्तियों पर इसका प्रभाव ज्यादा होता है। पत्तियाँ पीली पड़ जाती है तथा नसो पर उभार हो जाता है।

ओल में समेकित रोग नियंत्रण:

ओल की खेती को अधिक लाभकारी बनाने के लिए आवश्यक है, कि इसमें लगने वाले रोगों का समेकित प्रबन्धन किया जाए। इस सबंध में में अनुसंधान किये गये तथा इसके परिणाम उत्साहवर्धक पाये गये हैं। निदान के उपाय इस प्रकार है, जैसे-

1. रोपण सामग्री उच्य गुणवत्ता की होनी चाहिए, उनमें किसी भी प्रकार की गलन एवं घाव नहीं होना चाहिए।
2. रोपण सामग्री को ताजे गाय के गोबर के घोल में 5 ग्राम ट्राईकोड्रर्मा विरडी प्रति किलोग्राम कन्द की दर से घोल में 20-30 मिनट तक डुबाने के पश्चात् छाया में सुखा लें। इसके बाद रोपाई हेतु प्रयोग करें।
3. एक टन अच्छी तरह से सड़ा गोबर या कम्पोस्ट खाद तथा नीम की खली में एक किलोग्राम ट्राइकोड्रर्मा मिलाए, पर्याप्त नमी की अवस्था में पॉलीथीन से 7 दिनों तक ढ़क कर रखने के बाद इस खाद का 1 किलोग्राम प्रति गड्ढ़ा की दर से खेत में व्यवहार करने के बाद रोपाई करें।
4. रोपाई के 60 से 90 दिनों बाद इमिडाक्लोप्रिड (17.8 प्रतिशत एस. एल. 0.03) + मैंकोजेब (0.2 प्रतिशत) घोल के दो छिड़काव से कई फफूंद जनित एवं विषाणु जनित बीमारियों की रोकथाम सफलतापूर्वक की जा सकती हैं।

कंदों की खुदाई:

ओल के कन्द करीब सात से आठ माह में तैयार हो जाते है। यदि बाजार भाव ज्यादा हो तो इसकी खुदाई 6 माह बाद भी की जा सकती है। फसल तैयार होने का संकेत पत्तियों के पीले पड़कर सुख जाने से मिलता है। जब पूरा पौधा अच्छी तरह सूख जाये, तब कन्दों को सावधानीपूर्वक कुदाल से खोदकर निकाल लें। खुदाई के समय ध्यान रहे कि कन्द कटने न पायें, ऐसा होने से वे संक्रमित होकर खराब हो जाते हैं तथा इनका बाजार मूल्य भी कम प्राप्त होता है।

खुदाई के बाद ओल कन्दों के उपर लगी मिट्टी एवं जड़ों को साफ कर आकार के अनुसार छांट लें तथा 3-4 दिनों तक पक्की सतह पर फैलाकर रखें। छोटे-छोटे कन्दों को अगली रोपाई के लिए हवादार कमरों में लकड़ी के मचान या रैक पर अलग-अलग भण्डारित करना चाहिए। कन्दों को अधिक समय तक भण्डारित करने के लिए 10 से 12 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त पाया गया है।

पैदावार:

ओल की पैदावार रोपाई के समय प्रयुक्त कंदों की मात्रा पर निर्भर करती है। लेकिन उपरोक्त वैज्ञानिक तकनीक से अच्छी फसल होने पर कंदों की मात्रा और पैदावार का अनुपात 1:10 का होता है अर्थात यदि 90 x 90 सेंटीमीटर की दूरी पर लगभग 500 ग्राम वजन के कंद रोपाई के लिए प्रयोग किए जाते हैं, तो 6 टन प्रति हेक्टेयर रोपण सामग्री लगेगी तथा 40 से 70 टन प्रति हेक्टेयर पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

ओल या सूरन के बीज उत्पादन हेतु 40 x 60 सेंटीमीटर की दूरी पर 100 ग्राम वजन के कटे हुए कंदों के टुकड़े लगाने पर लगभग 2 से 4 टन प्रति हेक्टेयर रोपण सामग्री लगती है और 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर कंद उत्पादन के रूप में प्राप्त किए जा सकते हैं।

लेखक

ओम प्रकाश कांटवा, राजन चौधरी, निखिल राज एम., गव्हाने किशोर पांडुरंग, मीर मुनीब रफीक, दीपक राय एवं अभिजीत कर

तकनीकी सहयोग

श्री आशुतोष प्रभात

के.वी.के./खूंटी/2025/02

कृषि विज्ञान केन्द्र, खूंटी

भाकृअनुप – राष्ट्रीय कृषि उच्चत्तर प्रसंस्करण संस्थान, राँची

902_(0225) Anapurna Press and Process 6287999194, e-mail : appranchi.1969@gmail.com

ओल की व्यवसायिक खेती

कृषि विज्ञान केन्द्र, खूंटी

भाकृअनुप – राष्ट्रीय कृषि उच्चत्तर प्रसंस्करण संस्थान, राँची

परिचय:

ओल लोकप्रिय कंद फसलों में से एक है। ओल को जिमीकन्द या सूरन नाम से भी जाना जाता हैं। जिसका भारत में व्यापक रूप से इसका उपयोग किया जाता है। इसकी खेती देश के विभिन्न राज्यों में की जाती है। इसमें पोषण और औषधीय दोनों गुण होते हैं और आमतौर पर इसे पकी हुई सब्जी के रूप में खाया जाता है।

वर्तमान में इस फसल की लोकप्रियता इसकी छाया सहिष्णुता, खेती में सुगमता, उच्च उत्पादकता, कीट और रोगों का कम प्रकोप और यथोचित अच्छी कीमत के कारण काफी बढ़ रही है। इसके स्टार्चयुक्त कंदों से चिप्स बनते हैं साथ ही तनों और पत्तियों का उपयोग सब्जी के लिए भी किया जाता है। कंद में 18% स्टार्च, 1- 5% प्रोटीन और 2% वसा, जबकि इसकी पत्तियों में 2-3% प्रोटीन, 3% कार्बोहाइड्रेट और 4-7% तक कच्चा फाइबर होता है।

कंद और पत्तियां ऑक्सालेट की मात्रा अधिक होने के कारण काफी तीखी होती हैं, लेकिन पानी में काफी लंबे समय तक उबालने से आमतौर पर इसकी अम्लता दूर हो जाती है। अत: यह भारत के किसानों के लिए पोषण सुरक्षा की दृष्टि से एक लाभकारी फसल है।

जलवायु:

ओल एक उष्णकटिबंधीय / उपोष्णकटिबंधीय फसल है, इसलिए इसके लिए गर्म जलवायु अधिक उपयुक्त है। इसकी खेती के लिए औसत तापमान 25 से 30 डिग्री सेन्टीग्रेड तथा एक समान रुप से वर्षा या सिंचाई की आवश्यकता होती है और अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान के बीच बहुत अन्तर अधिक नहीं होना चाहिए।

प्रारम्भ में पत्तियों की वृद्धि में आर्द्र – जलवायु सहायक होती है। फसल की अवधि में जून से सितम्बर के बीच 1000 से 1500 मिली मीटर वर्षा अच्छी फसल के लिए आवश्यक होती है। रोपाई के समय कम वर्षा, पौधों की बढ़वार के लिए सामान्य वर्षा एवं तापमान तथा फसल तैयार के समय कम तापमान युक्त शुष्क वातावरण उपयुक्त है।

भूमि:

ओल की फसल विभिन्न प्रकार मृदा में उगाई जा सकती है। हालांकि सही भूमि का चुनाव करना इसकी खेती के लिए अति आवश्यक है। अच्छे जल-निकास वाली उपजाऊ, बलुई दोमट मिट्टी जिसमें कार्बनिक तत्वों की मात्रा अधिक हो ओल की खेती के लिए उपयुक्त है। मिट्टी का पीएच स्तर 5.5 से 7.0 के बीच होना चाहिए। खराब जल निकास एवं भारी मृदा में खेती से इसकी उपज में 50 से 60 प्रतिशत तक की कमी ऑकी गयी है।

आमतौर पर ओल को वर्षा आधारित फसल के रूप में उगाया जाता है। इसलिए खेत की तैयारी करने के लिए पहले एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा इसके बाद दो से तीन जुताई देशी हल से करें। प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पाट्टा चला दें जिससे मिट्टी भूरभूरी तथा समतल हो जाए ताकि बरसात के समय में पानी खेत में एकत्रित ना हो पाये। आखिरी जुताई के समय पूरी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 25 से 30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में मिला देनी चाहिए।

उन्नत किस्में:

गजेन्द्र: इस किस्म को अखिल भारतीय स्तर पर खेती के लिए अनुशंसित किया गया है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता सर्वाधिक है और खाने पर गले एवं मुंह में तीक्ष्णता एकदम नहीं होती। इस किस्म में सिर्फ एक ही कंद बनता है और अन्य स्थानीय किस्मों की तरह इसमें अगल-बगल से छोटे कंद नहीं बनते हैं। इसके कंद सुडौल तथा गूदा हल्का नारंगी होता है। यह किस्म दक्षिण और उत्तरी-पूर्वी राज्यों में अत्यधिक लोकप्रिय है। इसकी उत्पादन क्षमता 80 से 100 टन है।

श्री पद्मा (एम- 15): यह दक्षिण भारत की स्थानीय ओल किस्म है। इसकी उत्पादन क्षमता 80 टन प्रति हेक्टर है। एम श्रेणी की अन्य किस्में भी अच्छी पाई गयी है। इन किस्मों में भी तीक्ष्णता नगण्य है और एक ही सुडौल कंद बनता है।

संतरागाछी: यह ओल या सूरन की मध्यम उपज देने वाली किस्म है। जिसमें मुख्य कंद से लगे हुए अनेक छोटे-छोटे कंद बनते हैं और यह किस्म गले में हल्की तीक्ष्णता भी पैदा करती है।

कुसुम: यह ओल किस्म 'बिधान चंद्र कृषि विश्वविद्यालय (पश्चिम बंगाल)' द्वारा विकसित की गई है तथा इसकी उपज क्षमता और अन्य विशेषताएं 'गजेंद्र' के समान ही हैं।

बीज की माला:

अखिल भारतीय स्तर गजेन्द्र जैसी तीक्ष्णता रहित किस्मों को जिनमें एक ही बड़ा कंद होता है, को छोटे आकार के पूर्ण कंद या बड़े कंदों को छोटे टुकड़ों में काटकर रोपण सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता है। ओल की व्यावसायिक स्तर पर खेती करने के लिए 500 ग्राम से 1 किलोग्राम तक के पूर्ण या कटे हुए कंदों के टुकड़े उपयुक्त होते हैं। यदि सूरन बीज के कंद का वजन 250 ग्राम है, तो प्रति हेक्टेयर 35 से 40 क्विंटल और 500 ग्राम के लिए 75 से 80 क्विंटल की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार:

गाय के गोबर के गाढे घोल में मैंकोजेव 0.2 प्रतिशत और मोनोक्रोटोफॉस 0.05 प्रतिशत मिलाकर कटे हुए कंदों के टुकड़ों को उसमें डुबाकर उपचारित कर लेना चाहिए। गोबर के घोल से निकालने के बाद कंदों को उलट-पुलट कर 4 से 6 घंटे सुखाने के बाद ही रोपण क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए।

जहाँ तक संभव हो, व्यावसायिक स्तर पर खेती के लिए छोटे आकार के पूर्ण कंदों का ही प्रयोग करना चाहिए।

बुवाई का समय:

ओल आमतौर पर 6 से 8 माह में तैयार होने वाली फसल है और सिंचाई की सुविधा रहने पर इसे मध्य मार्च में लगा देना चाहिए। मार्च में लगाई फसल मध्य नवम्बर तक तैयार हो जाती है। बाजार की मांग को देखते हुए 5 से 6 माह बाद से खुदाई शुरू की जा सकती है।

पानी की सुविधा न होने पर इसे जून के अंतिम सप्ताह में मानसून शुरू होने पर लगाया जाता है। मार्च में लगाई जाने वाली फसल की पैदावार स्वाभाविक रूप से जून में लगाई फसल से अधिक होती है।

रोपण की विधि:

ओल की अच्छी पैदावार के लिए उसे हल्के गहरे गड्ढों में (40 X 40 X 40 सेंटीमीटर) गोबर की सड़ी हुई खाद, महीन बालू तथा अच्छी मिट्टी (1:1:1) भरकर रोपित करना चाहिए। रोपण में प्रयुक्त होने वाले कंदों के आकार के अनुसार पौधों की दूरी सुनिश्चित की जाती है। यदि 500 ग्राम से 1 किलोग्राम तक के कंदों को रोपा जा रहा है, तो पौधों और कतार के बीच की दूरी 90 सेंटीमीटर रखनी चाहिए।

यदि कंदों के टुकड़ों का आकार छोटा है तो 60 X 60 सेंटीमीटर की दूरी रखनी चाहिए। आम तौर पर व्यावसायिक उत्पादन के लिए 500 ग्राम से 1 किलोग्राम वजन के कंदों को तथा बीज उत्पादन के लिए 50 से 150 ग्राम वजन के कंदों को रोपा जाता है। रोपते समय कंदों को मिट्टी की सतह से 4 से 6 सेंटीमीटर की गहराई में लगाते हैं। रोपण के बाद धान के पुवाल या पत्तों आदि से गड्ढों को ढंक देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण:

ओल या सूरन की पत्तियाँ खुलते समय खरपतवार साफ कर रासायनिक खाद देकर मिट्टी चढ़ाना बहुत आवश्यक है। रोपने के दो माह बाद पुनः खरपतवार साफ कर रासायनिक खाद देकर मिट्टी चढ़ाना चाहिए। ओल की फसल के बीच प्रारंभिक 2 से 3 माह के भीतर साग, ककड़ी, खीरा आदि फसल लगाकर अधिक लाभ लिया जा सकता है|

फसल-चक्र: फसल-चक्र में ओल (मध्य मार्च से नवम्बर मध्य) में गेहूँ/सरसों/चना/मटर (मध्य नवम्बर से मध्य मार्च) या ओल (जून मध्य से दिसम्बर मध्य) में भिंडी/अरवी/मक्का/सरसों (दिसम्बर मध्य से जून मध्य) को सम्मिलित किया जा सकता है। दक्षिण में ओल और केले की मिश्रत खेती लादायक सिद्ध हुई है।

खाद और उर्वरक:

ओल अत्यधिक उर्वरकग्राही फसल है। गोबर की पूरी तरह सड़ी हुई खाद 25 से 30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देनी चाहिए। यदि गड्ढों में रोपाई की जानी है, तो गोबर की खाद को मिट्टी में मिलाकर गड्ढों में भर देना चाहिए। रासायनिक खादों में नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा 150:100:150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से देनी चाहिए।

मृदा परिक्षण के आधार पर मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है, इसलिए ओल की खेती से अच्छे उत्पादन के लिए मृदा परिक्षण आवश्यक है। आखरी जुताई या रोपण के समय फॉस्फोरस की पूरी मात्रा तथा नत्रजन और पोटाश की आधी मात्रा देनी चाहिए।

नत्रजन और पोटाश की बची हुई मात्रा दो बार में रोपाई के 30 एवं 60 दिन बाद खरपतवार निकाल कर पौधों पर मिट्टी चढ़ाते समय दे देनी चाहिए। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में नत्रजन और पोटाश की मात्रा बराबर 3 से 5 बार में देना ठीक रहता है लेकिन फॉस्फोरस की पूरी मात्रा सूरन की रोपाई के समय ही दे देनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन:

कन्दों की रोपाई के बाद यदि खेत में नमी की कमी हो तो एक हल्की सिंचाई अवश्य दें, ताकि मिट्टी के अन्दर पड़े कन्द सूखे नहीं तथा अंकुरण जल्दी और समान रूप से हो। तत्पश्चात् सिंचाई की यह क्रिया मिट्टी में नमी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। परन्तु ध्यान रहे अच्छी उपज के लिए खेत में नमी का होना आवश्यक है।

वर्षा शुरु होने के बाद सिंचाई देने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। पौधों के जड़ों के पास जल-